# मई १९९७ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

## आत्म कथनः शिविर संस्मरण

## अधिष्ठान फलीभूत हुआ

भारत में ही शिविर लगाते हुए वर्ष पर वर्ष बीतते गये। इस बीच धम्मगिरि, धम्मथली और धम्मखेत्त के विपश्यना केंद्र भी स्थापित हो गये। अब तो विदेशी साधकों की संख्या और अधिक बढ़ने लगी और साथ-साथ उनके देशों में जाकर धर्म सिखाने के लिए उनके आमंत्रणों का दबाव भी बढ़ता गया। पर मैं कर भी क्या सकता था! पुनः रंगून में मित्र ऊ ति हान से संपर्क किया, यह जानने के लिए कि शायद सरकारी नीति में कोई परिवर्तन हुआ हो। उसने संदेश भेजा कि स्थिति वही है। अतः मैं अब धर्म की ही शरण लूं। धर्म का ही अधिष्ठान करूं। इसी से भले सफलता मिले। मैं देख रहा था भारत में तो विपश्यना की जड़े जमने लगी हैं अब पूज्य गुरुदेव की दूसरी धर्मकामना पूरी करने के लिए मुझे धर्मदूत का काम करने विदेश जाना ही चाहिए। इसके अतिरिक्त एक और भी अप्रिय स्थिति उत्पन्न हो गयी थी जिसके कारण पश्चिम देशों में जाकर शुद्ध धर्म का प्रसारण करना अधिक आवश्यक प्रतीत होने लगा। कुछ एक अमरीकी साधक-साधिकाओं ने भारत के शिविरों में भाग लेकर मुझसे विपश्यना साधना सीखी और बिना पूरी तरह पके हुए, अति उत्साहवश अमेरिका में विपश्यना का एक केंद्र स्थापित कर लिया। वहां उन्होंने अपने प्रशिक्षण में एक तो शील को उतना महत्त्व नहीं दिया, जितना कि दिया जाना चाहिए। दूसरे इसे धनार्जन का साधन बना लिया जो कि नितांत धर्म-विरुद्ध था। तीसरे इस परंपरा में सिखाने का अधिकार न प्राप्त होने कारण इस तकनीक को अन्य तकनीकों से मिला कर सिखाने लगे जिससे इसकी शुद्धता नष्ट होने लगी। इन परिस्थितियों के कारण भी मेरी प्रबल इच्छा जागी कि मैं यह विद्या नैतिक आदर्शों के साथ शुद्ध रूप में पश्चिम देशों में पहुँचाऊं।

परंतु जब देखा कि बर्मी सरकार का प्रधानमंत्री मेरा मित्र होते हुए भी एंडोर्समेंट देने में असमर्थ है तो दूसरा विकल्प यही रह गया था कि मैं बर्मी नागरिकता छोड़ कर भारतीय नागरिकता अपना लूं ताकि भारतीय पासपोर्ट प्राप्त कर किसी भी देश में जाकर धर्म सिखा सकूं। परंतु ऐसा निर्णय करते हुए मन में एक भावनात्मक झिझक थी। भारत मेरे पुरखों की भूमि है। वह सभी बुद्धों की पावन भूमि है। अतः उसके प्रति मन में अपार श्रद्धा और गौरव का भाव सदा से रहा है। परंतु बर्मा मेरी जन्मभूमि है और जन्मभूमि का अपना गौरव है। **जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसि।** इसकी गरिमा तो स्वर्ग से भी अधिक है और जन्मभूमि भी ऐसी जहां दो-दो जन्म मिले, एक मां की कोख से और दूसरा भगवती विपश्यना की कोख से। अतः उसके प्रति जो भावनात्मक संबंध था, वह मुझे अपनी नागरिकता न छोड़ने का दबाव दे रहा था। एक ओर भावनात्मक दबाव था और दूसरी ओर कर्तव्य का आह्वान। इस कसमकस में मैंने अपने मित्र ऊ ति हान का परामर्श ही समीचीन माना और सम्यक संकल्प के साथ अधिष्ठान पूर्वक यह सत्य क्रिया की कि –"अब तक जो धर्मसेवा की है वह नितांत निःस्वार्थभाव से लोक-कल्याण के लिए ही की है ताकि मेरे गुरुदेव की धर्मकामना पूर्ण हो। मेरे गुरु भारत के ऋण से मुक्त हों। मैं अपने गुरु के ऋण से मुक्त होऊं। इस धर्मसेवा से मैंने अपने लिए कभी कोई आर्थिक लाभ नहीं उठाया है। इस सत्य वचन के प्रताप से धर्म यदि यह चाहे कि मैं केवल भारत में ही धर्मसेवा करता रहूं तो मुझे बर्मी नागरिक बनाए रखे और यदि यह चाहे कि मैं विश्व में विपश्यना का प्रसारण करूं तो भारत में धर्मदूत की सेवा के दस वर्ष पूरे होने पर मुझे भारतीय नागरिकता प्राप्त हो जाय।"

जब दस वर्ष की अवधि समीप आने लगी तो नागरिकता के लिए भारत सरकार को आवेदनपत्र चढ़ाया, यही मान कर कि धर्म यदि यही चाहता है तो ऐसा ही हो। वैसे भी देश-देश की भौगोलिक सीमाएं राजनैतिक या व्यापारिक कारणों से होती हैं। धर्म के लिए भौगोलिक सीमा का कोई प्रतिबंध नहीं होता। भारतीय नागरिक होकर भी काम तो धर्मदूत का ही करूंगा। व्यापार-धंधे द्वारा धन कमाने के लिए तो नागरिकता बदल नहीं रहा हूं। देश-विदेश में धर्म सेवा करने से मेरी जन्मभूमि बर्मा भी और पुरखों की पुण्यभूमि भारत भी, दोनों ही गौरवान्वित होंगी। इस पुनीत कार्य का श्रेय दोनों देशों को मिलेगा। एक मात्र उद्देश्य तो लोक-कल्याण का ही है। नागरिकता बदलने से जन्मभूमि के प्रति मेरे प्यार, सम्मान और कृतज्ञता के भाव में तो कोई कमी आयेगी नहीं।

भारत सरकार को आवेदनपत्र चढ़ा कर समझता था कि चंद दिनों में ही नागरिकता प्राप्त हो जायगी क्योंकि वैधानिक रूप से उसमें कोई कठिनाई नहीं थी। परंतु जब कभी धर्म के क्षेत्र में कोई महत्त्वपूर्ण कदम उठाया जाता है तो उसके सामने कोई अप्रत्याशित बाधा भी आ खड़ी होती है। मैंने सुना कि भारत सरकार के खुफिया विभाग ने मेरा फाइल रोक दिया है।

मुझे मालूम था कि भारत के खुफिया विभाग ने कुछ वर्षों पहले मेरी गंभीर जांच शुरू की थी। हमारे बड़े परिवार का भारतवासी अंग विशेष कर मेरे दो भाई और भतीजे आनंद मार्ग से घनिष्टतापूर्वक जुड़े हुए थे। भारत सरकार आनंदमार्ग को संदेह की दृष्टि से देखती थी। एमरजेंसी के दिनों मेरे दोनों भारतवासी भाइयों को कुछ दिनों तक कारावास में भी रखा गया था। अतः सरकार के मन में यह संदेह जागना स्वाभाविक था कि मैं भी प्रच्छन्नरूप से आनंदमार्ग का ही प्रचार कर रहा हूं। भले शिविर विपश्यना के नाम से लगाता हूं। मेरे बारे में सरकार के खुफिया विभाग ने खूब छान-बीन की। कुछ अधिकारी मुझसे व्यक्तिगतरूप से पूछताछ करने भी आए। कुछ प्रछन्नरूप से शिविरों में भाग भी लेते रहे। एक अधिकारी एक शिविर में सम्मिलित हुआ और शिविर समापन पर मुझसे मिला। उसने मुझे बताया कि वह मेरी निःस्वार्थ सेवा और इस सांप्रदायिक ताविहीन विद्या से बहुत प्रभावित हुआ है। उसी ने बताया कि अन्य अधिकारियों ने भी मेरे सेवाकार्य में कोई दोष नहीं

देखा है और उसने भी मेरे कार्य को सर्वथा निर्दोष पाया है और यह भी देखा है कि इसका आनंदमार्ग से कहीं कोई संबंध नहीं है।

परंतु अब मुझे पता चला कि मेरी धर्मसेवा सर्वथा निर्दोष पाए जाने पर भी और आनंदमार्ग से इसका कोई संबंध न होने पर भी मेरी जांच का फाइल बंद नहीं किया गया था। शायद उच्च अधिकारी मेरी गतिविधि पर कुछ अधिक समय तक निगरानी रखना चाहते हों। क्योंकि मैं स्वयं व्यापार-धंधे से सर्वथा मुक्त हो गया था तो भी मेरे पुत्र वृहद परिवार के आनंदमार्गी सदस्यों के साथ ही व्यापार में संलग्न थे। अतः आनंदमार्गियों के साथ मेरे पुत्रों का निकट संबंध होने के कारण वे मुझ पर कुछ दिन और निगरानी रखना चाहते थे। शायद इसी कारण मेरा नागरिकता का आवेदनपत्र रुक गया था। मैं कर भी क्या सकता था? मैं तो धर्म के अधिष्ठान के बल पर पूर्ण आस्वस्त था कि भारत में धर्मचारिका के दस वर्ष पूरे होते ही मुझे नागरिकता भी मिलेगी और पासपोर्ट भी, और मैं शीघ्र शिविर लगाने विदेश जा सकूंगा।इस दृढ़ विश्वास के बल पर मैंने विदेश के अपने साधकों को फ्रांस के गेइयों नगर में १ से ११ जुलाई ७९ तक शिविर लगाने की स्वीकृति दे दी थी। इस शिविर के तुरंत बाद फ्रांस में ही प्लेज नगर में १४-७ से २४-७ तक और उसके तुरंत बाद कनाडा के मांट्रियल नगर में २६-७ से ६-८ और फिर इंगलैंड के गोडालमिंग नगर में ९-८ से २०-८ और २१-८ से १-९ तक दो शिविरों की अनुमति दे दी थी। यों पश्चिम देशों में पांच शिविर लगाने के लिए मैं वचनवद्ध हो चुका था। साधकों ने शिविर के लिए स्थान भी आरक्षित कर लिए थे।

सबसे बड़ी समस्या गेइयों नगर (फ्रांस) में लगने वाले प्रथम शिविर की थी। यहां साधकों ने एक बहुत कीमती हॉस्टल बुक की थी और उसका भाड़ा भी अग्रिम भर दिया था। शिविर में सम्मिलित होने के लिए जिन लोगों को स्वीकृति दी जा चुकी थी उनमें से अधिकांश ऊंचे तबके के प्रतिष्ठित लोग थे। उनमें स्विटजरलैंड का एक डिप्लोमैट भी था। सब ने इस शिविर के लिए छुट्टियां ले रखी थी। शिविर समय पर न लगा तो कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। पर क्या किया जा सकता था! धर्मविरोधी शक्तियों ने विश्व में धर्मप्रसारण योजना के सामने दीवारें खड़ी कर दी थी। बर्मी सरकार पासपोर्ट में एंडोर्समेंट नहीं दे पा रही थी और भारत सरकार नागरिकता नहीं दे रही थी। दिल्ली में ही फाइल कहीं अटका हुआ था। कहींसे भी कोई आशा नजर नहीं आ रही थी। केवल एक मात्र धर्म के अधिष्ठान पर आधारित सत्यक्रिया का ही संबल था। मन में दृढ़ विश्वास था कि धर्म की शक्तियां सहायक होंगी ही।

फ्रांस के शिविर को आरंभ करने के लिए निश्चित की गयी तारीख एक जुलाई समीप आती जा रही थी। दिन पर दिन बीतते जा रहे थे। अब तो एक सप्ताह ही बाकी रह गया था। चारों ओर से अंधकार भरे वातावरण में कहीं प्रकाश की एक मंदी-सी झलक भी नहीं दिखायी दे रही थी। नागरिकता मिलने का अभी कोई ठिकाना नहीं। मिल भी जाय तो समय रहते पासपोर्ट मिल सकना नितांत असंभव। पासपोर्ट प्राप्त करने की भी लंबी औपचारिकता होती है जिसे पूरा करने के लिए लंबा समय लगना अपरिहार्य था। अब तो शिविर कैंसल करना ही होगा। साधकों को बड़ी निराशा होगी। उन्हें बहुत आर्थिक हानि भी उठानी पड़ेगी और सबसे बुरी बात यह होगी पुराने साधकों का उत्साह मर जायगा और नयों का विश्वास उठ जायगा। मैं उन्हें यही कहता आ रहा था कि विश्वास रखिए, शिविर समय पर अवश्य लगेगा। परंतु अब क्या होगा? इसी असमंजस में समय निकलता जा रहा था। अधिष्ठान था कि दस वर्ष तक भारत में धर्मचारिका पूरी करने के बाद मुझे विश्व में धर्मचारिका करने का अवसर प्राप्त हो। २२ जून १९७९ को दस वर्ष पूरे हुए। २३,२४, २५ जून एक-एक करके तीनों बीत गये। निराशा बढ़ती जा रही थी। शायद धर्म को यह स्वीकार्य नहीं है कि भारत के बाहर भी मैं ही धर्मदूत का कार्य करूं।शायद वह इसके लिए किसी अन्य को माध्यम बनाना चाहता है। इच्छा धर्म की!वह जैसा चाहे, वैसा ही हो। यदि धर्म ऐसा ही चाहता है तो मैं अपनी धर्मसेवा का कार्य केवल भारत तक ही सीमित रखूं।

इसी मनोस्थिति के बीच यकायक अगले दिन याने २६ जून को एक सुखद आश्चर्य प्रकट हुआ। उस दिन किसी सरकारी अधिकारी का फोन आया कि आप की तथा आप की धर्मपत्नी देवी इलायची की भारतीय नागरिकता के कागजात तैयार हैं। कल सुबह एस्प्लेनेड कोर्ट में 'मेट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट' के न्यायालय में आकर दोनों शपथनामा लें और अपनी नागरिकता के प्रमाणपत्र ले जायँ। दूसरे दिन हम दोनों समय पर न्यायालय जा पहुँचे और हमें भारतीय नागरिकता के प्रमाणपत्र प्रात हो गये।

विदेश में धर्मचारिका कर सकने की एक बड़ी बाधा दूर हुई। परंतु पासपोर्ट प्राप्त करने के लिए अब इतना कम समय रह गया था कि फ्रांस के दोनों महत्त्वपूर्ण शिविर लगा सकने की संभावना बिल्कुल नहीं थी। अब तक तो पासपोर्ट के लिए आवेदनपत्र भी नहीं दिया गया था। बिना भारतीय नागरिकता प्राप्त किए आवेदन करते भी तो कैसे!अब आवेदन करें और पासपोर्ट मिलने में बहुत शीघ्रता हो तो भी, तीन-चार सप्ताह तो लग ही जायँगे। परंतु फ्रांस के शिविर कैंसल करने को अब भी मन नहीं मान रहा था। सब कुछ धर्म पर छोड़ रखा था। देखें धर्म क्या चाहता है और क्या करवाता है!

नागरिकता का सर्टीफिकेट लेकर ज्योंही न्यायालय से बाहर निकले तो सामने हमारा टिकट बुकिंग एजेंट खड़ा था। उसके हाथ में पासपोर्ट के आवेदनपत्र के कागज थे। वहीं दोनों आवेदनपत्र भर कर उसके हवाले किए।नागरिकता प्राप्त करने की प्रसन्नता थी पर समय पर पासपोर्ट न मिलने से फ्रांस के शिविर कैंसल किए जाने की आशंका थी। इसी मनोस्थिति में घर लौटे तो एक और सुखद आश्चर्य प्रकट हुआ। ट्रैवेल एजेंट का फोन आया कि ऊपर से आदेश आने के कारण हमारा पासपोर्ट कल ही मिल जायगा। और सचमुच २८ जून को पासपोर्ट हाथ में आ गया। अब फ्रांस के शिविर लगा सकने की आशा बँधी। परंतु यात्रा के लिए फ्रांस का वीसा लेना आवश्यक था। जब पासपोर्ट हाथ में आया तब तक फ्रांस का दूतावास बंद हो चुका था। अब तो केवल २९ जून का एक दिन ही और रह गया था। एक पूरा दिन तो फ्रेंच वीसा मिलने में ही लग जाय और फिर यू.के .तथा कनाडा का वीसा भी लेना था तथा

भारत के बाहर जाने के लिए आयकर आदि दो-एक सरकारी विभागों के क्लियरेंस की औपचारिकता। यह सब एक ही दिन में कैसे पूरी होंगीं? परंतु जब धर्म को काम करना होता है तो सारे बंद दरवाजे अपने आप खुलते चले जाते हैं। यही हुआ। २९ जून का दिन बीतते-बीतते फ्रांस का वीसा मिला। देश से बाहर जाने की सारी औपचारिकताएं पूरी हुई। अब कामनवेल्थ के नागरिक होने के कारण यूके और कनाडा के वीसा की शायद आवश्यकता ही न हो, और हो भी तो पेरिस में उनके दूतावास से प्राप्त किया जा सकेगा। इस कारण यात्रा नहीं रुकेगी। और यूं २९ की रात की फ्लाइट से रवाना होकर हम ३० जून को पेरिस पहुँचे और वहां से कार द्वारा गेइयों पहुँच कर दूसरे दिन एक जुलाई को यथानिश्चित कार्यक्रम के अनुसार शिविर आरंभ कर सके। उसके बाद एक-एक करके विदेशों में निश्चित पांचों शिविर यथासमय सफलतापूर्वक संचालन करके बड़े प्रसन्नचित्त से घर लौट आए।

इस आश्चर्यजनक घटना से मेरा यह विश्वास और अधिक पुष्ट हुआ कि काम तो धर्म ही करता है। मैं तो केवल माध्यम बनाया गया हूं। काम करने के लिए धर्म को किसी न किसी को माध्यम तो बनाना ही होता है।

नागरिकता और पासपोर्ट मिलने की चमत्कारिक घटना का भी रहस्य खुला तो मालूम हुआ कि मेरे पुत्र मुरारी और उसकी धर्मपत्नी बहू वत्सला ने जब मेरी कठिनाई समझी तो उन्होंने इसका जिक्र श्री राधेश्यामजी मुरारका से किया जो वत्सला के पिता श्री हरिप्रसादजी घुवालेवाला के सगे मामा थे। श्री मुरारकाजी कांग्रेस पार्टी की ओर से केंद्रीय संसद के वर्षों सदस्य रहे। एक बड़े अनुभवी उद्योगपति होने के साथ-साथ वित्तीय मामलों में दक्ष थे। अतः कांग्रेस के शासन काल में वे अनेक बार संसद की पब्लिक अकाउंट्स कमेटी के अध्यक्ष चुने जाते रहे। श्री मुरारजी देसाई के वे घनिष्ट सहकर्मियों और मित्रों में से थे। अब दिल्ली में जनता पार्टी का राज्य था और मुरारजीभाई प्रधानमंत्री थे। मुरारकाजी ने मुरारी और वत्सला को आश्वासन दिया कि वे इस समस्या को सुलझाने के लिए भरसक प्रयत्न करेंगे। जिस प्रकार देश का राज्यतंत्र चलता है उसे देखते हुए किसी को विश्वास नहीं था कि वे कुछ कर पायेंगे। परंतु वे मेरे केस का पूरा विवरण लेकर तुरंत दिल्ली गये और प्रधानमंत्री मुरारजीभाई से मिले। उन्होंने गृहमंत्रालय से मेरे केस की फाइल मँगा कर देखी और कहा कि आनंदमार्ग को लेकर केंद्रीय खुफिया विभाग अभी कुछ दिन तक और तहकीकात किया चाहता है। इसलिए मजबूरी है। इस पर मुरारकाजी ने मुरारजीभाई से कहा कि इनके बारे में क्या आप का जासूसी विभाग मुझसे ज्यादा तहकीकात कर पायेगा? क्या हमने बिना पूरी तहकीकात किए ही अपनी बेटी इनके घर दे दी? यह तर्क सुन कर मुरारजीभाई हतप्रभ हुए, निरुत्तर हुए। उन्होंने तत्काल वहीं फाइल पर अपना निर्णय दिया और विदेशों में मेरे पूर्व निश्चित कार्यक्रमों को पूरा कर सकने के लिए समय रहते सारी कार्यवाहियां पूरी करने का आदेश भी दे दिया।

आश्चर्य है धर्म किस प्रकार अपना काम करवाता है। किस-किस को माध्यम बनाता है।

बहू वत्सला और पुत्र मुरारी में धर्म जागा और वे मुरारकाजी से जा मिले। मुरारकाजी में धर्मसंवेग जागा और वे मुरारजीसे जा मिले और मुरारजी में धर्मबुद्धि जागी तो धर्म अधिष्ठान फलीभूत हुआ। इन तीन मुरारियों ने मिल कर जो धर्मकार्य संपन्न किया वह सचमुच अत्यंत कल्याणकारी साबित हुआ। विदेश में विपश्यना के शुद्ध धर्म की पावन गंगा प्रवाहमान हो चली। अनेकों का कल्याण सधने लगा। पुत्र मुरारी और बहू वत्सला तो विपश्यना का मार्ग अपना ही चुके थे, पर बहुत चाहते हुए भी श्री मुरारकाजी और श्री मुरारजीभाई को भी इस भवविमुक्ति की साधना का धर्मदान नहीं दे सका। अब तो दोनों की शरीर-च्युति हो गयी। अतः उन दोनों के प्रति अपनी मंगल मैत्री ही प्रेषित कर सकता हूं। दोनों मेरे धर्मदान के अपरिमित पुण्यफल में भागीदार हों! दोनों का मंगल हो! कल्याण हो! दोनों की स्वस्तिमुक्ति हो!

मंगल मित्र,
सत्यनारायण गोयन्का.

## साधकों के उद्गार

आस्ट्रेलिया के मैरिनस ने लिखा है, " शिविर ने मेरी अच्छी परीक्षा ली, पर सु-परिणाम सामने आया!

मैं स्वयं भी ऐसी ही खोज में लगा हुआ था, पर मुझे यह ज्ञात नहीं था कि यह सब कुछ बुद्ध ने पहले से ही खोज रखा है। अब मुझे पता चल गरा है कि मेरी खोज में क्या-क्या कमियां थीं।

इस जीवन में अपने लिए मार्ग की खोज करते हुए मैंने बहुत इधर-उधर झांका है, पर अब देखता हूं कि यही मार्ग सीधा और सरल है। मैं इस पर चलने के लिए कटिबद्ध हूं।

मैं घर जा रहा हूं - प्रसन्नवदन, परिपूर्णता लिए हुए। मेरी खोयी हुई हँसी भी मुझे वापिस मिल गयी है।

केंद्र पर जब भी मेरी जरूरत हो, मुझे बुला लें। मेरा फोन नं. है - (०७) ५४४२५१५०

**"शांति, सद्भाव और हँसी,**
**ऐसे फूट पड़ें जैसे जंगल की आग।**
**और कर दें भस्मसात,**
**धरती का सारा क्रंदन, सारा विलाप॥**

- मैरिनस